

उत्तर प्रदेश की चुनौतियाँ The Challenge in Uttar Pradesh

आशुतोष वाष्णीय
Ashutosh Varshney
8.31.09

आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से उत्तर प्रदेश (उ.प्र.) भारत का सबसे बड़ा राज्य है और अब यह देश का सबसे अधिक पिछड़ा हुआ राज्य बनकर रह गया है। इसकी आबादी 17 करोड़ है अर्थात् भारत की कुल आबादी का 16 प्रतिशत हिस्सा इस राज्य में रहता है। लेकिन देश के सकल घरेलू उत्पाद में इसका हिस्सा केवल 6 प्रतिशत है। सन् 1960 से लेकर अब तक उ.प्र. का आर्थिक विकास राष्ट्रीय औसत में सबसे नीचे रहा है। वस्तुतः 1960-80 के दौरान उ.प्र. और तमिलनाडु दोनों ही राज्यों की आर्थिक विकास दर में कोई खास फर्क नहीं था। 1981 के बाद से भारत की औसत विकास दर बढ़कर लगभग 6 प्रतिशत हो गई। तमिलनाडु ने अपने-आपको रूपांतरित कर लिया है और उसकी विकास दर राष्ट्रीय औसत के आसपास अर्थात् 4.5 प्रतिशत तक प्रतिवर्ष पहुँच गई है। उ.प्र. जान-बूझकर पिछड़ा ही रह गया है। उ.प्र. के आर्थिक उत्पादन में कृषि का हिस्सा अभी भी 40 से भी अधिक है, जबकि इसके विपरीत भारत का घरेलू सकल उत्पाद आज भी 17 प्रतिशत से भी कम है। उ.प्र. में साक्षरता की दर राष्ट्रीय औसत से भी 7 प्रतिशत कम है और संभावना है कि उ.प्र. में जन्मी बालिका केरल में जन्मी बालिका से 20 साल कम जिएगी। उत्तर भारत के राज्यों में से राजस्थान में परिवर्तन की लहर दिखाई देने लगी है और अब बिहार में भी गिरावट की प्रवृत्ति संभलने के संकेत मिलने लगे हैं, लेकिन उ.प्र. का पतन अभी रुका नहीं है।

यदि कोई भारत का इतिहास पढ़े या 1947 के बाद से राष्ट्रीय राजनीति का सर्वेक्षण करे तो विशालकाय उ.प्र. के बारे में सोचकर ही हैरत में पड़ जाएगा। उ.प्र. से भारत के चार प्रधानमंत्री हुए हैं। सही हो या गलत, भारत की सभ्यता भी उत्तर-मध्य से ही जुड़ी रही है। उ.प्र. में ताजमहल है, वाराणसी का पवित्र तीर्थस्थल है और इलाहाबाद में गंगा-जमुना का संगम स्थल भी है। ये महान् स्थल राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व के हैं।

1950 और 60 के दशक में बेंगलोर एक सोता हुआ शहर था और उ.प्र. की राजधानी लखनऊ चहल-पहल, आत्म-विश्वास और गौरव से दमकता शहर हुआ करता था और आज बेंगलोर विश्व-भर में चर्चित शहर है और लखनऊ अतीत का खंडहर है। 1960 के दशक तक कानपुर शहर औद्योगीकरण में बेंगलोर से कहीं आगे था और आज यही कानपुर अपनी कपड़े की मिलों के बंद होते जाने के कारण आर्थिक निराशा के गर्त में डूब गया है। हाल ही में उ.प्र. के नोएडा की सफलता की कहानी राष्ट्रीय गौरव का विषय बन गई है। लेकिन नोएडा की सफलता का श्रेय दिल्ली से उसकी नजदीकी के कारण है, न कि उ.प्र. की नीति संबंधी दृष्टि के कारण।

उ.प्र. के इतने खराब रिकॉर्ड का कारण आखिर क्या है? उ.प्र. की गिरावट के दीर्घकालीन कारण तो बहुत साफ़ नहीं हैं, लेकिन हाल ही के कारणों को तो साफ़ तौर पर चिह्नित भी किया जा सकता है। लगभग 2007 तक के दशक तक उ.प्र. में कोई भी सरकार अपना कार्यकाल पूरा न कर सकी और यही कारण है कि इस राज्य में नीति संबंधी स्थिरता भी कभी नहीं आ सकी।

1980 के दशक के मध्य तक उ.प्र. की राजनीति में कॉन्ग्रेस का ही दबदबा रहा है. 1990 के दशक के आरंभ में निचली जातियों और मुसलमानों के साथ गठबंधन के कारण राजनीति में आई उथल-पुथल के कारण कॉन्ग्रेस का दबदबा खत्म हो गया और उसका राजनैतिक ढाँचा भी चरमरा गया. यही कारण है कि 1993 के बाद से उ.प्र. की विधान सभा में किसी भी राजनैतिक दल को बहुमत नहीं मिला. मई 2007 के विधान सभा के चुनाव में मायावती के नेतृत्व में विजयी दलित दल बहुजन समाज पार्टी (बसपा) की जीत के कारण अंततः राजनैतिक अनिश्चितता के बादल छँट गए और राजनैतिक स्थिरता की उम्मीद दिखाई देने लगी.

मायावती की विजय का आधार एक अनोखा सामाजिक गठबंधन था. 2007 में उ.प्र. के हर छोटे ब्राह्मण ने बसपा के लिए मतदान किया था. यहाँ तक कि 1960 के दशक के उत्तरार्ध के आरंभ में जब दक्षिण भारत में भी गैर-ब्राह्मण जातियों के दल सत्ता में आए थे तो भी सामाजिक पायदान में सबसे अधिक नीचे आने वाले दलित भी कभी अग्रणी नहीं रहे. 2007 में मायावती की जीत एक प्रकार की लोकतांत्रिक राजनैतिक क्रांति थी.

सत्ता के शिखर पर बसपा के आने के कारण आर्थिक विकास के लिए नए अवसरों के द्वार भी खुल गए. सबसे पहले तो राजनैतिक अनिश्चितता के जो बादल राज्य पर बरसों से छाए हुए थे, वे छँटने लगे और इस प्रकार राजनैतिक स्थिरता अपने आपमें ही सकारात्मक विकास की दिशा में आशा की किरण थी. साथ ही चुनाव के यथार्थ ने बसपा के मूल चुनावी घोषणा पत्र को भी बदल कर रख दिया. अब यह पार्टी दलितों तक ही सीमित नहीं रही. इस पार्टी के जनाधार में “गरीब उच्च वर्ग” और दलित तथा “पिछड़े वर्ग” के लोगों के शामिल होने के कारण यह स्पष्ट हो गया कि इस पार्टी को एक व्यापक सामाजिक गठबंधन के रूप में विकसित करने की आवश्यकता है.

इसप्रकार मायावती की जीत ने एक द्वंद्वात्मक राजनैतिक शक्ति के उदय की संभावना को जन्म दिया. मायावती को एक ऐसा अवसर मिला जिससे कि वह दलित राजनीति के मूल में निहित सम्मान की राजनीति को विकास की राजनीति से जोड़ सके. इससे वह व्यापक सामाजिक आधार वाले वर्ग की सेवा कर सकेंगी. इन दोनों उद्देश्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक है कि उ.प्र. को यह सोचना होगा कि आर्थिक विकास की ऊँची दर कैसे प्राप्त की जाए.

बस यहीं आकर मायावती की सरकार ने भारी चूक की. उन्होंने सम्मान की राजनीति के पुराने ढर्रे को ही कायम रखा. बस इसे और अधिक भव्य रूप दे दिया. परंतु आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है सुशासन और बाज़ार-आधारित नीतियाँ और मायावती की सरकार ने इसकी कमोबेश उपेक्षा ही की है.

तीन ऐसी बातें हैं जिनसे मायावती की सम्मान की राजनीति को पहचान मिली है: दलित प्रतीकों को सार्वजनिक स्थलों पर अधिक स्पष्ट रूप में स्थापत्य मूर्तियों के रूप में प्रदर्शित करना, मानक सरकारी सेवाओं और सार्वजनिक शिक्षा के आगे भी सकारात्मक कार्य का विस्तार और व्यवहारमूलक प्रतिफल पर अधिक जोर. पहली दो बातों का अभिप्राय तो स्पष्ट है, लेकिन तीसरी बात को और साफ़ करना जरूरी है.

प्रताप भानु मेहता ने *द बर्डन ऑफ़ डेमोक्रेसी* (पेंग्विन 2005) में इसे स्पष्ट करते हुए कहा है कि एक ऐसे समाज में जहाँ ऐतिहासिक दृष्टि से सामाजिक असमानताएँ बहुत अधिक हों, लेकिन लोकतंत्र के कारण ये सामाजिक असमानताएँ कम होने लगी हों, वहाँ यह आवश्यक नहीं है कि राजनीति आम समस्याओं को

सुलझाने या फिर समान दृष्टिकोण को विकसित करने में मदद ही करे. इसके बजाय राजनीति उन लोगों को दंडित करने का बहुत अच्छा साधन दिखाई देती है जो पहले काफी शक्तिशाली रहे हैं. सर्वहारा राजनीतिज्ञ खास तौर पर उन अफसरों का मनमाना तबादला करने में अपनी सत्ता का बहुधा दुरुपयोग करते हैं, जो उच्च वर्ग के हों या फिर ऐसे अफसरों को जबरन बुरी तरह दंडित करने का प्रयास करते हैं जो निचली जाति को सम्मान देने के नए व्याकरण के नियमों का उल्लंघन करते हैं.

निचली जाति को अपने समान नागरिक समझने का विचार बहुत अच्छा है, लेकिन सम्मान की राजनीति का यह पारंपरिक मॉडल विवादास्पद होने के कारण बहुत उलझा हुआ है. जब तक कि हम उन्हें आर्थिक दृष्टि से ऊपर नहीं उठाते तब तक यह रणनीति लाभप्रद नहीं हो सकती, महत्वपूर्ण होते हुए भी यह रणनीति प्रतीकात्मक ही है. इससे आम लोगों के जीवन में कायाकल्प नहीं होता. दक्षिण की निचली जाति की पार्टियों ने 1970 के दशक में इस बात को समझ लिया था और राजनीतिक सम्मान और आर्थिक विकास दोनों को ही समान महत्व देने लगी थीं ; बिहार की वर्तमान सरकार ने भी इन दोनों का महत्व समझ लिया है और तदनुसार राजनीति को ढाल लिया है, लेकिन मायावती अभी भी पारंपरिक ढाँचे से बँधी हुई हैं. उन्हें अपनी इस अधूरी दृष्टि की कीमत भी चुकानी पड़ी है. हाल ही के लोकसभा के चुनावों में उसे उन तमाम वर्गों के मतों से भी हाथ धोना पड़ा, जिन्होंने अपना मत देकर उसे राष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाई.

मूलभूत आधार पर राजनीतिक सम्मान और आर्थिक विकास का नया मॉडल अपनाने में मायावती की विफलता एक त्रासदी है. उ.प्र. के पास जबर्दस्त प्रौद्योगिकीय और वैज्ञानिक खजाना है. कानपुर का भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (IIT) विश्व स्तर का एक ऐसा संस्थान है, जिसके छात्रों में इनफॉसिस के संस्थापक नारायण मूर्ति और सिलिकॉन वैली के अन्य वैज्ञानिक और टेक्नोक्रेट भी शामिल हैं. उ.प्र. में लखनऊ स्थित भारतीय प्रबंधन संस्थान (IIM) जैसे उच्चस्तरीय संस्थान भी हैं. ऐसे संस्थानों की बौद्धिक पूँजी का नीतिगत प्रक्रिया में उपयोग होना अभी बाकी है. राजनीतिज्ञ और नौकरशाह समझते हैं कि उन्हें यह सब कुछ मालूम है.

अकेले कृषि और सड़क-मार्गों में निवेश से ही उ.प्र. पर्याप्त रूप में विकास की उच्च दर प्राप्त नहीं कर सकता. उ.प्र. को उच्च मूल्य-आधारित निर्माण और/या सेवाओं की बहुत आवश्यकता है और इस समय इस सरकार के पास कोई ऐसी प्रखर नीति भी नहीं है जिससे वह इसे प्राप्त कर सके. यदि उ.प्र. की नीति में परिवर्तन नहीं होता तो हो सकता है कि नौकरशाही की मानक सरणियों के बाहर जाकर नए-नए विचार आमंत्रित करने के कारण बिहार उ.प्र. को जन-कल्याण की दौड़ में पीछे छोड़ दे और मायावती की क्रांति का अंत हो जाए.

आशुतोष वाष्ण्य ब्राउन विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर हैं.

हिंदी अनुवाद: विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार

<malhotravk@gmail.com>